आधुनिक हिंदी साहित्य में बाजारवाद संस्कृति का चित्रण

डॉ. पांडुरंग अशोक दुकळे

(एम.ए.,एम.एड.,सेट, नेट.,पी.एच-डी.)

प्र.प्राचार्य,निर्मलाताई काकडे

आर्ट्स, कॉमर्स अँड सायन्स कॉलेज शेवगाव,

जिला. अहिल्यानगर (महा.)414502

pandurangdukale@gmail.com

सारांश:-

१९९१ के बाद विश्व स्तर पर कई महत्वपूर्ण घटनाएँ घटित हुई। सेवियत संघ का विघटन हुआ और भारत ने उदार आर्थिक नीति का स्वीकार किया। तब से भारतीय बाजार विश्व के लिए खुले हो गए। हर कोई अपना माल बेचने के लिए तरह-तरह की कल्पनाएँ अपनाने लगा। नए तरह के विज्ञापन निर्माण कराए गए। लखपति, करोड़पति बनाने के सपने दिखाएं जाने लगे। भारतीय मनोविज्ञान का अध्ययन करके गोरा बनाने वाली क्रीम बाजार में लाई गई। महँगी गाड़ी, परफ्यूम, सौंदर्य बढ़ाने वाली साबुन यह जिसके पास है वह अमीर समझा जाने लगा। यहाँ तक की सिगारेट पीना भी अमीरी के लक्षण समझे जाने लगे। निजीकरण और भूमंडलीकरण ने उपभोक्ता संस्कृति को जन्म दिया। जिसने पुरी दुनिया को बाजार में परिवर्तित कर दिया। विज्ञापन में नवीनता लाने के लिए अंग प्रदर्शन वाले विक्षिप्त और प्रक्षोभक दृश्य दिखाए जाने लगे। कहीं डरा धमकाकर,स्वास्थ्य का हवाला देकर आरोग्य रक्षा के लिए वह उत्पादन कितने सही है यह दिखाने का प्रयास किया गया। मॉल संस्कृति का उदय हुआ जिससे सभी चीज एक जगह मिलने लगी इससे स्थानीय संस्कृति, अस्मिता और आर्थिक स्थिति में बड़ा बदलाव आया। इससे लोगों के विचारों में परिवर्तन आया साहित्य में भी परिवर्तन आया। भाषा का स्वरूप बदल गया परिणाम स्वरूप पुरानी परंपरा और संस्कृति पूरी तरह से बदल गई।

जहाँ उदारीकरण, वैश्वीकरणमें'वसुधैव कुटुंबकम' की भावना नजर आती थी।जिसमें प्रेम, सद्भाव और त्याग दिखाई पड़ना चाहिए था, वहाँ बाजारवाद निर्माण हुआ, जिससे उपभोक्ता निर्माण हुए। ऐसा मनोविज्ञान निर्माण हुआ जिसने जागरूक नागरिक से बाजारू नागरिक बनाएँ। जिसका केंद्रीय भाव सिर्फ नफा खोरी रहा है।बाजारवाद की इस स्थिति ने शहरों से लेकर गाँवों तक सांस्कृतिक परीदृश्यता को बदलकर मनुष्य को वैश्विक अवधारणा से लेकर एकल उपभोक्ता तक रख दिया।मनुष्य हर चीज में माल ढूँढने लगा। यहाँ तक वह खुद को एक वस्तु के रूप में बाजार में खड़ा करने लगा। उसे औरत भी माल नजर आने लगी। खेल, साहित्य, राजनीति,धार्मिकता यहाँ भी बोलियाँ लगने लगी । खेलों में आदमी को पैसों पर तोला जाने लगा। मनुष्य की कीमत लगाई जाने लगी।नैतिकता, सभ्यता, कुल मर्यादा वह भूल गए। इससे हमारी पुरानी परंपरा और अस्मिता तहस-नहस हो गई। जहाँ मीडिया खुले आम नारी के अंग

प्रदर्शन को बढ़ावा दे रहा है, वहाँ साहित्य कैसे पीछे रह सकता है। जहाँ प्रेम जैसी संकल्पना बड़ी नाजुकता से प्रस्तुत की जाती थी वहाँ विकृति के साथ विषय भाव आ गया है। दया,करुणा, सहृदयता आदि बंधनों से मनुष्य जैसे मुक्त हो गया। रहन-सहन के साथ-साथ पहनने ओढ़ने की चीजों में भी पुरानी और नई पीढ़ी में संघर्ष अधिक तीव्र हो गया है। भाषा का स्वरूप और शब्दों के प्रयोग में भी बड़ा बदलाव आया है। ब्रश, टूथपेस्ट, होटल, ट्रैवल, इंटरनेट, शर्ट, पैंट, टीवी, मोबाइल, टॉयलेट, बाथरूम,की बोर्ड,प्रिंट,स्टेपलर जैसे शब्दों का प्रयोग विश्व स्तर पर सभी भाषाओं में हो रहा है। ग्रामीण और शहरी संस्कृति में बड़ा बदलाव आया है। इसका प्रभाव स्पष्ट रूप से साहित्य में दिखाई पड़ता है। निदा फ़ाज़ली की राय में,बाजार ने एक नई संस्कृति का गठन किया है कभी शब्दों की अहमियत होती थी आज शब्द हाशिए पर चले गए हैं। क्रिकेट का बल्ला राजनेता का चेहरा वह उनका भाषण संस्कृति के चेहरे बन चुके हैं।[1]

मूल शब्द :-

आधुनिक साहित्य, हिंदी साहित्य में बाजारवाद, भूमंडलीकरण, उपभोक्तावाद, उदारीकरण, निजीकरण, वसुधैव कुटुंबकम.

विस्तार :-

बाजारवाद ने घर पर ही विमर्श का मंच तैयार किया है।लोग घर बैठे जन जीवन पर लिख रहे हैं। इसमें कितनी वास्तविकता आ सकती है यह नहीं कहा जा सकता लेकिन लोगों का मनोरंजन हो रहा है। सामाजिक संघर्ष से ध्यान हटाने के लिए पूंजीपति धर्म और जाति की बातों से भेद निर्माण करने का प्रयास कर रहे हैं।इससे गाँव, शहर, कस्बा प्रभावित है। यहाँ तक रिश्ते, नाते, परिवार के साथ धर्मस्थल भी प्रभावित हो चुके हैं। साहित्यकारों ने इसे अपने साहित्य में मुखरता प्रदान करने का प्रयास किया है। जहाँ बाजारवाद ने मनुष्य के संगठन से ज्यादा दूरियाँ बनानेहर समय नया पर्याय सामने रखने और पुरानी संस्कृति और परंपरा छोड़ने का काम किया है,वहीं भूमंडलीकरण ने पुरानी संस्कृति को धूमिल करके नई परंपरा और मिश्र संस्कृति को जन्म देने का प्रयास किया है।

मनुष्य का जीवन सुखमय हो उन्हें सुख-दुख व्यक्त करने के लिए जगह मिले। उन्हें आनंद मिलने के लिए बाजारों का निर्माण कराया गया था। लेकिन आज बाजार बाजारों की जगह पर न रहकर हमारे घर तक पहुंच गया है। वस्तुओं से मनुष्य की पहचान होने लगी है । घर परिवारों के रिश्तों से बाजारवाद की गंध आ रही है। धन संपत्ति देखकर संबंध बनाए जा रहे हैं। रिश्ते पैसों से तोले जाने लगे हैं। 'दौड़' इस उपन्यास द्वारा आज के युवाओं की स्थिति का अंदाजा आ सकता है। आज का युवक बाजार से पूर्णता संचालित है। वह अपने कर्तव्य और मूल्य की मान्यताओं को नजर अंदाज कर रहा है। उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रभाव उन पर दिखाई पड़ता है।वह हर रिश्ते को धन संपत्ति और तोहफों से खरीदना चाहता है। दौड़ का पत्र पवन अपनी माँ को खुश करने के लिए महँगी चद्दर उपहार में देने की कोशिश करता है तब माँ उसे लेने से इंकार करती है ।आज का युवा मुक्त जीवन जीना चाहता है। माता-पिता के अपने बच्चों के प्रति जो मनोभाव है वह दौड में व्यक्त हुए है।अनिवासी और प्रवासी केवल

पर्यटक □□□□ होते बच्चे भी होते है। वे दौड-दौडकर दर्जी के यहाँ से नए सिले कपडे लाते है, सुटकेस में अपना सामान और कागजात जमाते है। मनीबेल्ट में अपना पासपोर्ट, वीजा और चंद डॉलर रख रवाना हो जाते है अनजान देश,प्रदेश के सफर पर माता-पिता को सिर्फ स्टेशन पर हाथ हिलाते छोडकर।□[2]

सभी बातों को पैसों से तोला जा रहा है। पवन कुछ दिनों के लिए अपने ही घर रहने के लिए आता है। घर में रहने के लिए वह बीस हजार रूपयों का चेक माँ के नाम पर देता है और कहता है मेरे आने से आपका बहुत खर्चा हुआ होगा यह बीस हजार रुपए रख लो, बाकी के अगले वेतन पर दे दूँगा। इससे बाजारवाद ने हमारी परंपरा को किस प्रकार तहस-नहस कर दिया यह दिखाई पड़ता है। जहाँ हमारे यहाँ अतिथि देवो भव का नारा लगाता था,वहीं परिवार के लोग अपने ही घर पर रहने का हिसाब किताब लगा रहे हैं। युवा घर पर रहना नही चाहते। वह अपनी आजाद जिंदगी जीना चाहते है। 'रेहन पर रग्घू' का संजय भी ऐसा पात्र है जिसे लगता है माता-पिता उन्हें पीछे खींच रहे है। वह कहता है,□ला ऑफ ग्रेविटेशन का नियम केवल पेडों और फलों पर ही नही लागू होता, मनुष्यों और संबधों पर भी लागू होता है। हर बेटे- बेटी के माँ बाप पृथ्वी है। बेटा उपर जाना चाहता है और ऊपर थोडा-सा ऊपर और ऊपर माँ बाप अपने आकर्षण से उसे नीचे खींचते है। आकर्षण संस्कार का भी हो सकता है, प्यार का भी, माया मोह का भी!□[3]

आजकल सब कोई धन कमाने के लिए कुछ भी करने के लिए तैयार है। मनुष्य इस मशीनी युग में मशीन बन चुका है। बाजारवाद इतना हावी हो गया है कि हर काम के लिए मशीन बन चुके है। यहाँ तक मशीनों से बच्चे भी पैदा हो रहे हैं। इससे सभी राष्ट्र की विचारधारा प्रभावित हो चुकी है। भाव, संवेदना, प्रेम नष्ट हो रहा है। मोबाइल और इंटरनेट ही दुनिया है ऐसा मनुष्य को लग रहा है। राष्ट्र की सत्ता में बाजार ने दखल देकर एक नए साम्राज्यवाद का निर्माण किया है। जिसमें बाजार पर जिसकी पकड़ है उसकी राष्ट्र पर सत्ता और न्यायिक प्रक्रिया तक इसमें सिमट गई है।विचारों पर गहरी चोट पड़ी है। जीवन जीने के लिए पुराने विचार नष्ट हो गए हैं। युवा अलग ही विचार कर रहे हैं। काशीनाथ सिंह के उपन्यास 'रेहन पर रग्घू'में संजय के द्वारा युवाओं के विचार दिखाने का प्रयास किया गया है। संजय को लगता है जीवन अपने तरीकों से जीना चाहिए। उसके आधुनिक विचार निम्न उद्धरण में व्यक्त हुए है। □किसी लड़की को टुकड़ों में नहीं टोटैलिटी मैं देखना चाहिए! कितना फर्क पड़ जाता है? साथ ही लड़की और पत्नी को एक ही तरह से नहीं देखना चाहिए। रंग, रूप, हाव-भाव, नाज-नखरे लड़की में देखे जाते हैं, पत्नी में नहीं। सब पुराने कंसेप्शन हुए। हमारे पापा मम्मी के जमाने के हमारे नहीं।□[4]

युवा पीढ़ी पर विज्ञापन और बाजारवाद संस्कृति का गहरा प्रभाव हुआ है। हर चीज की कीमत होती है और उसे खरीदा जा सकता है,ऐसी धारणा आज के युवाओं की है। 'लीव इन रिलेशनशिप', समलैंगिक विवाह जैसे चलन गाँव तक पहुँच चुके हैं। महिला मित्र के साथ परदेश यात्रा आम बात हो गई है। मस्त मौला जीवन जीना युवक-युवतियों को सही जीवन लगने लगा है। 'रेहन पर रग्घू' की नायिका सरला प्यार में इतनी अंधी हो गई थी कि उसे अन्य कुछ दिखाई नहीं दे रहा थी। उसकी मनोदशा का वर्णन निम्न उद्धरण से पता चलता है। □प्यार बंद और सुरक्षित कमरे की चीज नहीं है

खतरों से खेलने का नाम है प्यार, लोगों की भीड़ से बचते बचाते उन्हें धता बताते उनकी नजरों को चकमा देते जो किया जाता है वह है प्यार! शादी से पहले यही चाहती थी सरला। शादी के बाद तो विश्वासघात होगा। व्यभिचार होगा अनैतिकता होगी जो करना है पहले कर लो। अनुभव कर लो एक बार। मर्द का स्वाद! एक एडवेंचर! जस्ट फॉर फन![5]

रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी मूलभूत सुविधाएँ भी बिकाऊ हो गई है। पूंजीवाद के आगे मानवी संवेदना फीकी पड़ गई है। मनुष्य चुप है और वस्तुएँ बोल रही है, वस्तुओं से मनुष्य का मूल्यांकन हो रहा है। साहित्य लेखन और प्रकाशन में बदलाव आया है। किसी भी दुख और वेदना पर कोई लेखनी नहीं चला रहा है। विश्वविद्यालय और महाविद्यालय में जो पाठ्यक्रम पढ़ाया जा रहा है वह सिर्फ नौकरी प्राप्त करने का जरिया बन चुका है। जो शोधकार्य हो रहा है वह सिर्फ छात्रवृत्ति के लिए हो रहा है। संशोधन भी जिसमें अर्थ प्राप्ति हो उसी विषय पर करवाया जा रहा है। प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए उपाधियाँ ली जा रही है। शोधालेख के नाम बदलकर छपवाना आम बात हो गई है।

साहित्य समाज को सही दिशा में ले जाने का काम करता है, मनुष्य जीवन की यांत्रिकता को दूर करने का प्रयास करता है, लेकिन पूंजीपतियों ने धान के बल पर साहित्य को ही अपाहिज बना दिया है। आज का संशोधन सामाजिक समस्या को उजागर नहीं करता है। वह सिर्फ धन के पीछे भागने वाला संशोधन रह गया है। किसान, मजदूर, आम आदमी इन पर कोई भी लेखन नहीं हो रहा है, क्योंकि इससे धन प्राप्ति नहीं होती। जहाँ धन है वह साहित्य नाम बदलकर संस्करण पर संस्करण छपवाए जा रहे है। मानवी मूल्य पर काम न होकर 'बेस्ट सेलर' पर ध्यान दिया जा रहा है। इस तरह की असंवेदनशीलता साहित्य में पहले कभी नहीं देखी गई। बाजारवाद ने मनुष्य को मशीन में तब्दील कर दिया।

बाजारवाद और उदारीकरण ने भारतीयों को अन्य राष्ट्र के बाजारों के दरवाजे तो खोल दिए लेकिन हमारी संस्कृति और अस्मिता छीन ली। बाजार की इस अंधी दौड़ को ममता कालिया ने अपने 'दौड' उपन्यास में अभिव्यक्त किया है। पवन दौड़ का नायक और युवा पात्र है। अंतिम वर्ष की परीक्षा से पहले अहमदाबाद के एक कंपनी द्वारा उसे नियुक्ति मिलती है। माँ-बाप को लगता है पवन को अपने पास रखें लेकिन पवन को लगता है मुझे नई बातें सीखने को मिलेगी, अच्छी तनख्वाह मिलेगी। वह अपने माता-पिता से कहता है, यहाँ मेरे लायक सर्विस कहाँ है, यह तो बेरोजगारों का शहर है। यहाँ ज्यादा से ज्यादा नूरानी तेल की मार्केटिंग मिल जाएगी माँ-बाप समझ गए थे कि उनका शिखरचुंबी बेटा कहीं और बसेगा लेकिन फिर भी पिताजी पवन से कहते हैं कि दिल्ली तक भी आ जाओ तो, सच दिल्ली आना जाना बिल्कुल मुश्किल नहीं है। रात प्रयागराज एक्सप्रेस से चलो सवेरे दिल्ली।कम से कम हर महीनें तुम्हें देखा तो लेंगे, या कोलकाता आ जाओ। वह तो महानगर है।[6]

बाजारवाद ने युवाओं के जीवन में तो हलचल मचाई है। इस चकाचौंध वाले जीवन ने विचार ही बदल दिए हैं। आधुनिक रहन-सहन का भूत हर एक के सिर पर सवार है। आज के युग में रीति, रिवाज, संस्कृति, परंपरा, विचार, रहन-सहन, स्ने यह सब बदल चुका है। हर कोई यंत्रवत आभासी युग में जी रहा

INTERNATIONAL JOURNAL OF NOVEL RESEARCH AND DEVELOPMENT (IJNRD)
© 2026 IJNRD | Volume 11, Issue 2, February 2026 | ISSN: 2456-4184 | IJNRD.ORG

है। पवन अपने माता-पिता से कहता है,पापा मेरे लिए शहर महत्वपूर्ण नहीं है कैरियर है। अब कोलकाता को ही लीजिए कहने को महानगर है पर मार्केटिंग की दृष्टि से एकदम लद्धड़! कोलकाता में प्रोड्यूसर का मार्केट है कंजूमर का नहीं। मैं ऐसे शहर में रहना चाहता हूँ जहाँ कल्चर हो ना हो कंज्यूमर कल्चर जरूर हो। मुझे संस्कृति नहीं उपभोक्ता संस्कृति चाहिए तभी मैं कामयाब रहूँगा।[7]

बाजारवाद को बढ़ावा देने के लिए आज कई प्रकार के विज्ञापन आ रहे हैं। वस्तु खरीदने पर कुछ लुभाव ने उपहार देना शुरू है, तो कहीं एक के ऊपर एक वस्तु मुफ्त मिल रही है। कुछ वस्तुओं पर यात्रा कूपन मिल रहे हैं। बाजारवाद के इस युग में ज्ञानी, चिंतक, मनीषी और चरित्रवान पुरुष का कोई सुनता नहीं है। क्योंकि ऐसे लोगों से कंपनियों को कोई फायदा नहीं है। मनुष्य खुद बाजार में खड़ा है उसने अपने सामाजिक जीवन को बाजर बना दिया है साथ ही नारी को भी बाजार में खड़ा कर दिया है और उसे 'माल' समझने लगा है। व्यक्ति की उपयोगिता, उसका मूल्य पैसों पर लगाया जा रहा है। वह कितना कमाता है इसके ऊपर घर में वह उतना लायक होता है। इस प्रकार उसके साथ व्यवहार होता है। शहरों से लेकर गाँव तक यह बदलाव दिखाई देता है। बदलते हुए गाँव की तस्वीर गोविंद मिश्रा ने अपने 'कोहरे में कैद रंग' इस उपन्यास में अभिव्यक्त की है,हम उजड़ जरूर गए थे पर वैसा लगा नहीं। इस नगर में बहुत कुछ ऐसा था जो नया था। यह जिला था हमारे पुराने नगर के मुकाबले यहाँ हर चीज बड़ी थी। बस्ती के बाहर पर उसे सटा हुआ ही हाई स्कूल था। लंबा चौड़ा आहता फैली फैली इमारत, रियासती स्कूल से चौगुनी। पास में कलेक्टर और कप्तान साहब कीकोठियाँ थी जिसमें अंग्रेजों कीजगह अब हिंदुस्तानी अफसर थे। आए दिन सड़कों पर सफेद खादी के धोती कुर्ता पहने, टोपी लगाए लोग तेज चाल में इधर से उधर आते हुए दिखाई देते।[8]

हमारी खान पान की अलग संस्कृति थी। सुबह के नाश्ते में आलू, मटर, साग, सब्जी, चना आदि खाया जाता था। आज उसकी जगह 'फास्ट फूड' ने ले ली है। हालत तो यह है कि पिज़्ज़ा पहले पहुँच जाता है और एंबुलेंस बाद में। रिश्तो नातों में भी वैसा ही बदलाव आ चुका है। वही रिश्ता निभाया जाता है जिससे कोई फायदा हो। गोविंद मिश्रा 'कोहरे में कैद रंग' की सावित्री द्वारा यह बताना चाहते है।

सावित्री अपनी उम्र को देखते हुए कुछ ज्यादा ही गंभीर थी। उसकी मां का स्वर्गवास हो चुका था और विमाता की अपनी दो लड़कियाँ थी। जिन पर माँ-बाप का सारा खर्च हो जाता था। सावित्री को इस लायक भी नहीं समझा जाता था कि स्कूल भेज कर उसपर कुछ खर्च किया जाता। वह फालतू थी किसी तरह किसी चीज में उसे उलझाए रखना था।[9]

निष्कर्षता:- कहा जा सकता है कि पूंजीवाद ने अपने चेहरे पर ऐसे मुखौटे धारण किए हैं जिनकी आड़ में बाजारवाद स्पष्ट दिखाई देता है। इस संदर्भ में शंभूनाथ का कथन है, वास्तविकता यह है कि दुनिया में एक ही संस्कृति की धूम है, जो वैश्वीकरण के पीछे खडी है। यह मुनाफे, खुदगर्जी और निर्ममता की संस्कृति है। अंततः बडी पूंजी के चमकीले आतंक के आगे कुछ ठहर न सका। पूंजीवाद इतना अराजक कभी नहीं था, उसमे इतनी बडी ताकत पहले कभी नही थी। यह अराजकता और ताकत

का खेल समाज में ऊपर से नीचे तक देखा जा सकता है। बाजारवाद में जिसके पास संपत्ति है उसी को पूछा जाता है। इस चमक दमक वाले दुनिया में हम अपनी पुरानी संस्कृति, पुराने रिश्ते, अपनी अस्मिता यह सब बातें खो चुके हैं। रहन-सहन के साथ-साथ, चाल-चलन, नाते-रिश्ते आदि सब हम भूल चुके हैं। साहित्य में भी इसका गहरा प्रभाव हमें दिखाई पड़ता है। अपना स्टेटस बढ़ाने के लिए चीजें खरीदी जा रही है। अमीरी का दिखावा हो रहा है। यहाँ तक बातें हो रही है कि कोई फोन खरीदने के लिए लोग अपनी किडनी तक बेच रहे हैं। इससे बड़ा दुर्भाग्य क्या हो सकता है? इस बाजारू अपसंस्कृति ने हमारा वर्तमान छीन लिया है और हमारे इतिहास पर बलात्कार कर दिया है।साहित्य की दृष्टि इससे भिन्न नहीं है। मनुष्य ने ईश्वर को भी बाजार में खडा करके बेचना शुरू किया है। साहित्य तो दूर की बात है। समाज में व्याप्त घटनाएँ साहित्य का अंग बन चुकी है।

संदर्भ सूची:-

1. https://www.live Hindustan.com/news//artical1story-55262.html
2. दौड- ममता कालिया, पृ.2-3
3. रेहन पर रग्घू - काशीनाथ सिंह, पृ.23
4. रेहन पर रग्घू - काशीनाथ सिंह पृ.21
5. रेहन पर रग्घू - काशीनाथ सिंह पृ.31
6. दौड- ममता कालिया, पृ.11
7. दौड- ममता कालिया, पृ.40-41
8. कोहरे में कैद रंग - गोविंद मिश्र, पृ.33
9. कोहरे में कैद रंग - गोविंद मिश्र, पृ.42-43

• **Copyright & License:**
© Authors retain the copyright of this article. This work is published under the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0), permitting unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.